ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 369-370
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

गीत–संगीत, फिल्मों, धारावाहिकों का बदलता स्वरूप

रेखा कुमारी
शोध अध्येत्री– हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, (दिल्ली), भारत

Received- 23.06.2020, Revised- 26.06.2020, Accepted - 29.06.2020 E-mail: - rekha.du84@gmail.com

सारांश : *वक्त कहां से कहां आ गया है। और लोग भी महलों, हवेलियों, किलों से निकलकर छोटे घरों मे आए। 500 गज और धीरे–धीरे 200, फिर 100 अब महानगरों की स्थिति यह है पचास गज भी मयस्सर नहीं। पच्चीस गज या फिर किराये पर एक कमरे में । अब दिल्ली में जमीन ही नहीं मिलती । दो कमरों या एक कमरे का फ्लोर 15/20/25/30 लाख में मिलते हैं। गरीब मजदूर की बस की नहीं खरीदना भी । मोटी तनख्वाहवा ले भी दिल्ली मुंबई जैसे शहरों में जमीन, फ्लैट, फ्लोर नहीं ले पा रहे । जो ले रहे हैं लोन लेकर ले रहे हैं । बेचारे दस बीस साल तक उतारते रहते हैं लोन के पैसे । अब दिल्ली मुंबई कलकत्ता में किराए पर, बल्कि पहले से ही एक – एक कमरों में 5–6 लोग मुर्गियों की तरह दड़बों में रह रहे हैं । खोली तो 60/70 के दशक में ही मुंबई में इजाद हो गई थी। फिल्में भी बनी, चॉल और खोली की पृष्ठभूमि पर । पिया का घर, प्राण जाए पर चॉल न जाए, सलाम बॉम्बे, सलीम लंगड़े पर मत रो, चाँदनी बार, भूमिका, चक्र, जैसी फिल्में बनी।*

कुंजीभूत शब्द–महानगरों , मयस्सर, जागीरदार, फिल्में, आईना,पृष्ठ भूमि, कमाना, उद्देश्य, निर्देशक, धारावाहिक।

फिर ये अचानक से बॉलीवुड को क्या हुआ है? जो महलों, हवेलियों, किलों में दर्शकों को ले जा रहा है, जब महल, किले, हवेलियों,राजा – रानी, महाराज – महारानी, राजकुमार – राजकुमारीयां, न्वाब, जागीरदार ही नहीं रहे, तो फिल्में क्यों उन पर बन रही हैं ? पहला पहला प्यार, प्रेम रत्न धन पायो, बाहुबली, क्या हम कहीं दिखाई देते हैं इन फिल्मों में ? फिल्में हमारे समाज का आईना होती हैं । जब हमारे समाज का आईना होती हैं तो फिर हमारे समाज से अलग पृष्ठ भूमि पर फिल्में क्यों बन रही हैं? सिर्फ पैसा कमाना उद्देश्य है फिल्म निर्देशक के लिए ? समाज से कोई सरोकार नहीं होना चाहिए ? एनटरटेंमेंट के लिए कुछ भी परोसने के लिए तैयार हैं । सारा दोष निर्देशक को ही नहीं दे सकते । दर्शक भी गंभीर समस्याओं पर समस्या प्रधान फिल्मों की बजाए ऐंटरटेनमेंट ही चाहते हैं। बहुत कम लोग हैं जो समस्या प्रधान फिल्में देखना चाहते हैं।

धारावाहिक पर बात करें तो वहां भी ऐंटरटेंनमेंट के नाम पर कुछ भी अलूल–जलूल परोसा जा रहा है। समाज और समाज की समस्याओं से कोई सरोकार नहीं धारावाहिक बनाने वाले निर्देशक को। जी क्लासिक, कलर्स, स्टारप्लस, जैसे चौनल भी ऐसी ही घटिया पृष्ठभूमि पर सीरियल बना रहे हैं। जिन का हमारे समाज से कोई लेना देना नहीं है । उन नाटकों में कहीं पच्चीस गज में रह रहे लोगों की लाइफ है? स्कूल, कॉलेज युनिवर्सिटी हैं, अस्पताल हैं, छोटे हाट, बाजार हैं, साहित्य है ? बुनियादी सवाल कोई पात्र उठाता है? कोई मुस्लिम लड़की स्कूल कॉलेज युनिवर्सिटी जाने की लड़ाई लड़ती है उनमें ? बैड रूम ड्रॉइंग रूम स्टाइलिश किचन महंगी कार डिजाइनर कपड़े गहनों के विज्ञापन के सिवा आज कल के नाटकों में है क्या?

साहित्य तो कहीं नजर नहीं आता आज कल के धारावाहिकों में। पहले दूरदर्शन पर जो धारावाहिक आते थे उनमें बहुत से धारावाहिक साहित्यिक कहानियों पर आधारित होते थे। प्रेमचंद की कहानियों पर भी बहुत से धारावाहिक बनें थे। मिर्जा गालिब धारावाहिक कितना अच्छा बना था, और भारत एक खोज भी। नीम का पेड़, मैला आंचल, श्रीकांत, पचपन खंबेलाल दीवार, ये धारावाहिक उपन्यास पर आधारित थे। इन सभी नाटकों में हमारे समाज की सामाजिक आर्थिक राजनीतिक स्थिति थी। बेरोजगारी गरीबी अशिक्षा गैर बराबरी कोई समस्या आज के धारावाहिकों में दिखाई नहीं देती। दूरदर्शन के जो पुराने धारावाहिक होते थे, वैसे अब नहीं बनते। उन पुराने धारावाहिकों में ग्रामीण समाज था, किसान थे। हमारी आर्थिक सामाजिक स्थिति उन धारावाहिकों में था। आज जो सीरीयल आ रहे हैं, हम कहां हैं उनमें ? इन सब बातों पर गौर करने की जरूरत है।

आज कल कोई कलात्मक फिल्म रिलीज होती है। किसी भी रियेल्टी शौ, न्यूज चौनल के प्रोग्राम में उन फिल्मों के बारे में नहीं बताया जाता, उनकी पब्लिसिटी नहीं करता कोई। कितने लोग जानते हैं कि अभी पिछले दस सालों में, डोरतहान, मसान, लंच बॉक्स, चॉक एन डस्टर, क्लब 60, अनारकली ऑफ आरा,कौन कितने पानी में, जैसी

अनुरूपी लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

फिल्में आई कमी कहां है? कसूर वार कौन है? मिडिया, बॉलीवुड, दर्शक? बॉलीवुड तो सभी तरह की फिल्में बना रहा है। कल्पना पर आधारित भी और यथार्थ पर आधारित भी। कलात्मक फिल्में भी, लेकिन मिडिया सिर्फ ऐक्शन, ड्रामा, कल्पनात्मक, ग्लेमर्स फिल्मों को, कमर्शल फिल्मों को क्यों कवर करता है? इसलिए दर्शकों तक कलात्मक फिल्मों की जानकारी नहीं पँहुचती, और इन कलात्मक फिल्मों का मेसेज दब जाता है। उन कलाकारों की मेहनत भी बेकार हो जाती है जो कलात्मक फिल्मों में काम करते हैं। जिसके कारण अच्छा अभिनय अच्छी फिल्में उपेक्षित रह जाती हैं।

आमिर खघन मनोरंजन के माध्यम से अपनी कुछ फिल्मों में संदेश देते हैं । उनकी फिल्में समाज का आईना हैं। तारे जमी पर, थ्री इडियट्स, लगान, तलाश, पी के, एक अच्छी फिल्मों की श्रेणी में आती हैं। उन्होंने ये साबित किया है कि मनोरंजन के जरिए भी गंभीर समस्याओं को दर्शकों के सामने रखा जा सकता है आजकल कुछ निर्देशक हैं जो स्त्री प्रधान फिल्में भी बना रहे हैं जैसे तीन साल पहले अविनास दास ने अनारकली ऑफ आरा बनाई। मगर हजारों फिल्मों में दो चार फिल्में ही नायिका प्रधान होती हैं।

संगीत तो मर ही गया है बॉलीवुड फिल्मों में पता नहीं क्या हो रहा है आज कल संगीत के नाम पर! हाल फिलहाल की फिल्मों के संगीत को सुनकर ऐसा लगता है कि, कोई सिर में हथौड़े बजा रहा हो। सब्जी मंडी में कोई चिल्ला–चिल्ला कर सब्जी बेच रहा हो । ऐसा लगता है आज कल के गीतों को सुनकर जैसे सब निरर्थक ध्वनि हैं। जिनका कोई उद्देश्य नहीं। समाज और लोगों की आर्थिक सामाजिक मानसिकता स्थिति से उन्हें कोई सरोकार नहीं। इन सॉन्ग की तुलना किस्से की जाए ? हम तो कहीं हैं ही नहीं उनमें। पुरानी फिल्मों के मुजरे भी इन आइटम सॉन्ग से बेहतर हुआ करते थे। उनमें कुछ अर्थ होता था। क्या अब लता, आशा, रफी, किशोर मन्ना महेंद्र कपूर, जगजीत सिंह, अल्का, कविता जैसी शख्सियात बॉलीवुड हम संगीत प्रेमियों को नहीं देगा? हमारी आने वाली पीढ़ी, सिर्फ निरर्थक बकवास देखेगी, सुनेगी?

हमारी पीड़ी इन घटिया धारावाहिक, गीतों, न्यूजचैनलों के कारण प्रभावित हो रही है। बॉलीवुड भी गैर जिम्मेदार हो गया है। मिडिया कर्मी भी गैर जिम्मेदार हो गए हैं। संगीत जगत भी गैर जिम्मेदार हो गया है। न्यूज चौनल, मनोरंजन चौनल, फिल्मी चैनल सब ग्लेमर्स बन कर रह गए हैं । रेडियो पर अब भी अच्छे गीत गजल आतें हैं। गीत–संगीत की जानकारी मिलती है। वहाँ अच्छी चर्चा भी होती है इस बहुत से गंभीर विषय पर। जो आज भी पुराने गीत गजल सुनना पसंद करते हैं रेडियो से जुड़े हुए हैं। मोबाईल फोन पर रेडियो सुनते हैं भले बाजार और घरों से रेडियो गायब हो गए।

हिन्दुस्तान की सभी राज्य शासित और केन्द्रशासित युनिवर्सिटीज को अपने कॉलेजेस में कैम्पस में सभी तरह के ग्रेजुएट पोस्ट ग्रेजुएट प्रोफेशनल कोर्स में एक विषयगीत–संगीत कलात्मक फिल्मों थेटर का रखना चाहिए। ताकी हमारा सदियों पुराना मोहक मधुरगीत–संगीत जीवित रहे आने वाली पीढियों के जहनों–दिल में और आने वाली पीढ़ियां कलात्मक फिल्मों से जुड़े, थेटर से जुड़ें। इन सब को पढ़कर आने वाले स्टूडेंट्स आदर्श नागरिक भी बनेंगे। हमारी गंगा – जमुनी तहजी बबर करार रहेगी। वर्तमान समय में यह बेहद जरूरी है। मीडिया तो यह जिम्मेदारी भूल गया। शिक्षा विभाग ही सामने आए और निभाए यह जिम्मेदारी।

*****